E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2021; 3(4): 113-118
Received: 13-08-2021
Accepted: 29-09-2021

मिथिलेश कुमार ठाकुर
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
मिथिलेश कुमार ठाकुर
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत

महाकवि कालिदास के साहित्य में राष्ट्रिय चेतना

मिथिलेश कुमार ठाकुर

DOI: https://doi.org/10.33545/27068919.2021.v3.i4b.650

प्रस्तावना

महाकवि कालिदास ऐसे युग के आरम्भ में आविर्भूत हुए थे जब भारत उपनिषदों से पुराणों की ओर, वेदान्त और सांख्य की ऊँची चोटियों से उतरकर संन्यासमूलक योग की शारीरिक प्रक्रियाओं की ओर अभिगमन कर रहा था । भारत के महान संस्कृति, परम्पराओं से चमत्कृत कालिदास ने भारत की भौतिक मनःस्थिति के व्याख्याता बनकर स्वरचित साहित्य में राष्ट्रियता का पोषण किया । महाकाव्य हो या खण्डकाव्य या नाटक, कालिदास की राष्ट्रिय चेतना सर्वत्र प्रचुर रूप से परिलक्षित हुई है । राष्ट्र की सीमाओं में कवि को अपनी जन्मभूमि से विशेष प्रेम होता है । जीवनवृत्त की दुर्लभता की स्थिति में यह अभिनिवेश कविरचित साहित्य के अनुशीलन से सरलतया प्रकाश्य हो जाता है, किन्तु कालिदास के विषय में यह सिद्धान्त खरा नहीं उतरता है । कारण भारत के प्रत्येक भूभाग का वर्णन उन्होंने इतनी तन्मयता और मनोयोग के साथ किया है कि वे बंगाल में जन्म थे या उज्जयिनी में या हिमालय में सन्दिग्ध ही रह जाता है । भारतीयता के प्रति जो आत्मीयता और कृतज्ञता कालिदास के साहित्य में दृष्टिगत होती है वह उन्हें राष्ट्रिय कवि सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है ।

महाकवि कालिदास भारतवर्ष की सभ्यता-संस्कृति-कला-दर्शन-साहित्य-इतिहास भूगोल-भाषा-वेशभूषा-ज्ञान-विज्ञान से केवल सुपरिचित ही नहीं थे, अपितु इनके प्रति उनमें प्रगाढ़ सम्मान की भावना अनुस्यूत थी । मानों भारत की महान धरोहरों की सुरक्षा करने के लिए ही उन्होंने काव्यसर्जना की थी । वे भारत के साथ अपने भावात्मक सम्बन्ध को अभिव्यक्त करते हैं ये राष्ट्र की जनता के श्रद्धेय देवताओं और महापुरुषों को अपने आख्यानों के प्रमुख पात्र के रूप में प्रस्तुत कर राष्ट्र के वातावरण के साथ अपनी रागात्मक प्रतिबद्धता को योतित करते हैं । राष्ट्रियता से ओत-प्रोत उनके काव्य भारत के जन-जन को स्फूर्ति प्रदान कर राष्ट्र के लिए समर्पित होने के लिए प्रेरित करते हैं ।

महाकवि कालिदास को स्वराष्ट्र भारत से आत्मिक प्रेम था यह आत्मीयता उनके साहित्य में परिलक्षित होती है । ऋतुसंहार महाकवि कालिदास की प्रथम काव्य रचना है । भारतीय संस्कृति में ऋतु का सर्वाधिक महत्त्व है, जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है । विश्वपटल पर कई देश छऋतुओं के आस्वादन से वंचित रहते हैं । इन पविध ऋतुओं में भारतवासी कैसे आमोद-प्रमोद करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं, उसका कवि ने वर्णन किया है । कवि ने प्रत्येक प्रसंग में प्रकृति से मंगलकामना करते हुए सामाजिकों के लिए आशीर्वाद की कामना की है । ऋतुओं का वैविध्य अन्य देशों से भारत का भगोलिक वैशिष्ट्य को योतित करता है । मेघदूत महाकवि कालिदास द्वारा रचित एक सरस गीतिकाव्य है सक्षिप्त विषयवस्तु में भी महाकवि ने कर्तव्य परायणता का सन्देश दिया है । यज्ञ के मुख से मेघ को अलकापुरी के मार्ग आने वाले गिरि नदी एवं नगरी का जो भावपूर्ण वर्णन किया है, उसमें भी उनका अपने देश के प्रति प्रगाढ़ परिचय एवं प्रेम ही प्रमुख हेतु है ।

महाकवि कालिदास को भारत की नदियों, पहाड़ों, प्रदेशों, दनराशियों देवालयों पर गर्व है । उनका यह गर्व मेघदूत में शब्दासित हुआ है, यक्ष के मुख से मेघ को दक्षिण से उत्तर तक भेजने का मार्ग बताने के बहाने से उन्होंने भारत में बिखरी प्रभूत प्राकृतिक सम्पदा की वन्दना की है । भारत के पशु-पक्षी वृक्ष-वनस्पति, नदी-निर्झर नगर उपत्यकाएँ- सभी उनकी लेखनी का स्पर्श पाकर सदा-सदा के लिए अमर हो गए हैं । मार्गकथन के क्रम में, सन्देश भेजने के उपक्रम में उन्होंने रामगिरि, मालवदेश, आम्रकूटगिरि रेवा नदी, दशार्ण देश, विदिशा नगरी, वेत्रवती नदी निर्विया नदी, अवन्तिपुरी, उज्जयिनी नगरी शिप्रा नदी महाकालेश्वर मन्दिर, देवगिरि, स्कन्द मन्दिर, चर्मण्यती नदी ब्रह्मावर्त देश कुरुक्षेत्र सरस्वती नदी, कनखल तीर्थ, गंगा नदी हिमाचल प्रदेश क्रौञ्चरन्ध, कैलास पर्वत तथा अलकापुरी का सांगोपांग वर्णन कर भारत की प्राचीन भौगोलिक स्थिति को स्थाई कर दिया है

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपम् ।
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।[1]

यक्ष का दूत मेघ समग्र भारत का भ्रमण कर हिमालय पर्वत की प्रमुख चोटी कैलासगिरि पर जाकर बहरता है । यही हिमालय की श्रृंखला उसकी यात्रा का अन्तिम पड़ाव है । इस अन्तिम पड़ाव से हिमालय से कालिदास की एक रचना जन्म लेती है, जिसका नाम है कुमारसम्भव । इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में हिमालय को पृथिवी का मानदण्ड बताया है, विविध रत्नों और औषधियों का भण्डार कहा है । हिमालय का मानवीकरण बढा ही रोचक है । भगवान शंकर को पतिरूप में पाने के लिए पार्वती को सौन्दर्य का सहारा त्यागकर जब तपोलीन वर्णित करता है तो कवि के मनोमस्तिष्क में भारतीय संस्कृति के प्रति आकर्षण है । अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय तथा मालविकाग्निमित्र इन तीनों नाटकों के भरतवाक्यों में राष्ट्रिय भावना को योतित करते हैं । कवि की भावना रही है कि राजा प्रजा का योगक्षेम करते रहे । अपने राष्ट्र का अच्छी तरह भरण-पोषण करने के गुण को ही देखकर शकुन्तलापुत्र का नाम भरत रखते हैं । राष्ट्रसम्पदा के प्रति अतुलनीय प्रेम देखकर उन्हें राष्ट्रकवि स्वीकार करना, अत्युक्ति नहीं होगी । इसके प्रथम श्लोक में ही भारतमाता के किरीटस्वरूप देवतात्मा हिमालय को सकल पृथिवी का मानदण्ड बताते हुए मानों कालिदास का मस्तक भी गर्व से हिमालय जितना ऊँचा हो गया है

अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरो तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः।।[2]

कालिदास ने हिमालय पर्वत को महिमामण्डित कर अपरोक्षरूप से भारत की भावी पीढ़ी को देश की रक्षा में पाषाणस्तम्भवत् दृढ रहने की कर्मठतापूर्वक कर्त्तव्यपालन की और अपने वैभव को दूसरों पर लुटाने की शिक्षा दी है । उन्होंने इसे भारत के धार्मिक

यज्ञों की सामग्री का उत्पत्तिस्थान, पृथिवी का आधारस्तम्भ और पर्वतों का स्वामी कहा है-

यज्ञाग्नियोनित्वमवेक्ष्य यस्य सारं धरित्रीधरणक्षमं च ।
प्रजापति कल्पितयज्ञभाग शेलाधिपत्य स्वयमन्वतिष्ठत् ॥[3]

हिमालय पर्वत की प्राणोपयोगी सम्पदा के उल्लेख से कवि ने एक प्रकार से भारत की प्राकृतिक प्रचुर सम्पत्ति का वर्णन किया है । हिमालय पर्वत में मिलने वाली जड़ी-बूटियाँ, वन्यपशु, पुष्प प्रजातियों, रत्नधातु आदि के गीत गाते हुए कवि थकता नहीं है

'अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सोभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवाङ्कः।[4]

अर्थात् अनन्तरत्नों के जन्मदाता इस हिमालय की शोभा हिम के कारण कुछ कम नहीं हुई, क्योंकि जहाँ बहुत से गुण हों वहाँ यदि एकाध अवगुण हो तो उसका पता पैसे हो नहीं चलता, जैसे चन्द्रमा की किरणों में उसका कलंक छिप जाता है । कालिदास की यह वैचारिक उदारता परिचायक है उनके भारतभूमि में जन्म लेने की वैदिक साहित्य के प्रति उनके अविरल अध्ययन की जहाँ समग्र वैदिक धर्मों के प्रति, मानवमात्र के प्रति सहनशीलता का पाठ पढ़ाने वाला ऋषि कहता है

एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ।[5]
एवमेव - एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।[6]

रघुवंशमहाकाव्य कालिदास की प्रौढतम रचना मानी जाती है । इसके उन्नीस सर्गों में राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के उनतीस सूर्यवंशी राजाओं का न्यूनाधिक वर्णन हुआ है । राजा दिलीप एवं रानी सुदक्षिणा से गौसेवा द्वारा पुत्रप्राप्ति का वरदान दिलवाकर भारतीय संस्कृति में गो के महत्त्व को परिलक्षित किया है । राजकार्यों की दक्षता, राजाओं का वैभव तथा आदर्शजीवन का वर्णन करने में कवि की राष्ट्रिय भावना ही प्रमुख है । कान्तासम्मित उपदेश से जीवन के गूढ़ सत्यों को उद्घाटित करते हुए जनसमुदाय को सत्कर्म में प्रवृत्त करते हैं, यह कवि की कला एवं मनुष्यमात्र के कल्याण की भावना है । रघुवंश में राजा दिलीप नन्दिनी गाय की रक्षा हेतु सिंह के सामने स्वयं को समर्पित करते हैं, यह समर्पण उनका राष्ट्र के प्रति है । महाकवि कालिदास मानते हैं कि व्यष्टिगत बलिदान से समष्टिगत जीवनों की रक्षा होती है तो ऐसा बलिदान श्रेष्ठ है रघुवंशी राजाओं की विशेषताओं तथा राष्ट्र हेतु क्रियाकलापों का वर्णन राष्ट्रिय चेतना को ही प्रकाशित करता है । रघुवंशी राजाओं के चरितवर्णन के प्रसंगों में कालिदास का यह भारत प्रेम स्पष्ट परिलक्षित हुआ है । उनकी दृष्टि में यह तथ्य भारतीयों के लिए अतीव गौरवाचायक है कि रघुवंशी नरेशों ने समुद्रपर्यन्त भारतराष्ट्र का संवर्धन सावधानीपूर्वक किया है, प्रजा की भलाई के लिए वे सतत् जागरुक रहे हैं, मानों वे ही प्रजा के पिता हो –

प्रजानां विनयाधानादक्षणाद् भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥[7]

पिता अपने पुत्रों को कुमार्गगामी होने से रोकता है, सन्मार्ग की शिक्षा देता है, सब प्रकार से उनका रक्षण-पालन करता है । राजा दिलीप प्रजा को सत्कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते थे, उनके लिए अन्न-धन-वस्त्र शिक्षा का प्रबन्ध करके उनका पालन-पोषण करते थे, विपत्तियों से उनकी रक्षा करते थे । वे ही प्रजा के वास्तविक पिता थे, जन्मदाता पिता तो केवल जन्म का कारण थे । रघुवंशी राजाओं- दिलीप, रघु अज, दशरथ राम, भरत आदि नरेशों के उदातवरित भारतीय संस्कृति के आचार-विचार से अनुप्राणित हैं । उनके आवरण जन्म से मृत्यु तक पवित्र है, जो समुद्रपर्यन्त पृथिवी के स्वामी हैं, जिनकी गति उनके उत्कृष्ट कार्यों से स्वर्ग तक है, जो यज्ञीय संस्कृति में

विश्वास रखते हैं, जो याचक को दान से सन्तुष्ट करते हैं, जो सत्य की रक्षा में तत्पर रहते हैं, जो यशप्राप्ति के लिए दूसरे देशों को विजय करते हैं, जो बाल्यकाल में विद्याध्ययन करते हैं, जो सन्तानोत्पत्ति के लिए विवाह करते हैं, जो गृहस्थाश्रम में भागों का सुख प्राप्त करते हैं, जो वृद्धावस्था में संगरिक सुख का त्याग कर देते हैं, जो इच्छानुसार योग से मृत्यु का वरण करते हैं । रघुवंशी राजाओं के इन श्रेष्ठ गुणा से अभिभूत कालिदास मानी सम्पूर्ण भारत को इन आदर्शों को चरित्र में अवतारणा करने के लिए ही मुखर हुए हैं –

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ।।[8]
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिना म् ।।[9]
त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमधिनाम् ।।[10]
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयेषिणाम् ।
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।[11]
रघुणामन्वयं वक्ष्ये तनुवान्विभवोऽपि सन् ।
तदगुणे कर्णमागत्य चापलाय चोदितः ॥[12]

कालिदास की कल्पना में भारत के प्रत्येक नागरिक का व्यक्तित्व उसी सांचे में ढला होना चाहिए जो स्वार्थ से ऊपर, विश्व के योगक्षेम में व्यस्त सर्वे भवन्तु सुखिन की अनुगूंज को सार्थक करता हो । जगत्प्रसिद्ध रचना शाकुन्तल में उन्होंने ऐसे ही आदर्श से ओत-प्रोत दुष्यन्तपुत्र भरत की उद्भावना की है । भरत सर्वदमन हैं, उनके व्यक्तित्व में आज का आधिक्य है, शत्रु उनसे पराभूत होते हैं, शेर भी उनके समक्ष निरीह पशु बन जाते हैं –

'अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दविलष्टकेसरम् ।
प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षसि ।।[13]

भारत के आबालवृद्ध नर-नारी सभी को आज आलस्य का परित्याग कर ऐसे साहस और वीरत्व गुण से सम्पूरित होने की आवश्यकता है । सन्तान को विचारों और कार्यों से. श्रेष्ठ बनाने का दायित्व निर्वहण माँ करती है । भरत की माँ शकुन्तला ने सर्वदमन को अदम्य बनाकर भारत की नारियों के सामने स्त्री के अबलात्व को निषिद्ध सिद्ध कर दिया है । वस्तुत भारत की स्त्रियों में अनुकूलन की वह अपार क्षमता है कि पुरुष के आश्रय में प्रतिपल छाया पाने वाली कोमलतम नारी भी प्रतिकूल परिस्थितियों में सबल और सक्षम बन दृढता से उठ खड़ी होती है ।

शकुन्तला भी इसी भारतीय नारी-समाज का प्रतिरूप बन कालिदास की श्रेष्टरचना अभिज्ञानशाकुन्त में आविर्भूत हुई । पति द्वारा अकारण लाछित और अपमानित एकाकिनी स्त्री भी किस प्रकार समाज के लिए उपयोगी हो सकती है, दया की पात्र नहीं दर्प की अधिकारिणी बन सकती है, पुत्र भरत के उदात्त व्यक्तित्व निर्मिति से उसने यह प्रमाणित कर दिखाया । तभी तो सम्पूर्ण राष्ट्र को भलीभांति भरण-पोषण करने के गुण से प्रभावित होकर ही कालिदास ने शाकुन्तलेय का भरत नाम उद्भावित किया है –

रथेनानुद्घातस्तिमितगतिना तीर्णजलधिः।
पुरा सप्तद्वीपां जयति वसुधामप्रतिरथः ।।
इहाय सत्त्वानां प्रसमदमनात्सर्वदमनः,
पुनर्यास्यात्याख्यां भरत इति लोकस्य भरणात् ।।[14]

अर्थात् यह बालक अपने दृढ और सीधे चलने वाले रथ पर चढ़कर समुद्र पार करके सातों द्वीपों वाली पृथिवी को इस प्रकार अकेला जीत लेगा कि संसार का कोई भी दीर इसके सामने ठहर नहीं सकेगा । यहाँ इसने सब जीवों को तंग कर रखा था, इसका नाम सर्वदमन पड गया था, परन्तु भविष्य में सम्पूर्ण संसार का भरण-पोषण करने से इसका नाम भरत होगा । इतना ही नहीं

अपितु वायुपुराण भी इसी का स्पष्ट संकेत करता है, और कहता है –

चक्रवर्ती ततो राज्ञे दौष्यन्तिनृपसत्तम ।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् ।।[15]

कालिदास अखण्ड भारत के पूजक थे भारत मूर्तिपूजा में विश्वास रखने वाला देश है । इस तथ्य को मन में रखकर अभिज्ञानशाकुन्तल की नान्दी में उन्होंने शंकर की जिस अष्टमूर्ति की प्रत्यक्ष कल्पना की है, वे समग्र भारत में स्थान-स्थान पर स्थापित हैं यथा सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, चन्द्रमूर्ति पश्चिम में काठियावाड के सोमनाथ मन्दिर में तथा पूर्व में बंगाल के चन्द्रनाथ क्षेत्र में स्थित है, यजमानमूर्ति नेपाल के पशुपतिनाथ मन्दिर में क्षितिलिंग काची में, जललिंग जम्बुकेश्वर के शिव मन्दिर में तेजोलिंग अरुणाचल पर वायुलिंग कालहस्तीश्वर (तिरुपति बालाजी के उत्तर) में और आकाशलिंग चिदम्बरम मन्दिर में है शंकर की ये आठों मूर्तियाँ उत्तर में नेपाल से लेकर पश्चिम में काठियावाड से लेकर पूर्व में बंगाल तक व्याप्त है और भारत की एकता तथा अखण्डता को यातित करती हैं –

"प्रत्यक्षामि प्रपन्नस्तुभिरवतु वस्ताभिरष्टामिरीशः ।।[16]

कालिदास स्वतन्त्र भारत की छवि से प्रेम करते हैं । कार्तिकेय द्वारा तारकासुर पर विजय और वध की कथा का रोमहर्षक वर्णन करके उन्होंने विजातीय विधर्मी विदेशी शासकों पर सुनियोजित एवं सफल प्रत्याक्रमण करने की अदम्य प्रेरणा देनी चाही है –

इति विषमशरारे सूनुना जिष्णुनाजौ त्रिभुवनवरशल्ये प्रोद्धते दानवेन्द्रे ।
बलरिपुरथ नाकस्याधिपत्यं प्रपद्य व्यजयत सुरचूडारत्नधृष्टाग्रपादः ।।"[17]

कालिदास साहित्य में त्याग, तपस्या, निःस्वार्थभाव का प्रशिक्षण देने वाली आश्रम व्यवस्था मानवता का सन्देश देती हुई सर्वत्र मुखरित होती है । कालिदास की रचनाओं से आश्रमों को निकाल देने पर मानों उनकी रचनाएँ प्राणवायुविहीन सी हो जाती है । वसिष्ठ, वाल्मीकि, मरीचि, कण्व वरतन्तु सुक्ष्ण आदि अनेक ऋषियों के आश्रमों के पवित्र वातावरण भारतीय संस्कृति की मनोरम छटा प्रस्तुत करते हैं । इन आश्रमों की आंच में तपकर निखरे ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियाँ कालिदास के पात्रों में ढलकर विश्व को भारत के चरणों में नत होने को विवश कर देते हैं । इन आश्रमों के अन्तवासियों के जीवन में घटित प्रसंग और घटनाएँ अपनी शालीनता से संसार को चमत्कृत करती हैं । राजा दिलीप हॉ या राजा दशरथ राजा राम हॉ या राजा दुष्यन्त ऋषियों की निश्छल निर्वाध दिनचर्या से प्रभावित प्राय आश्रमों के सन्निकट वास किया करते थे –

राजा-सूता नोदयाश्वान! पुण्याश्रमदर्शनेन तावदात्मानं पुनीमहे।[18]

कालिदास की रचनाओं में राष्ट्र की आत्मा प्रतिकलित हैं । वे राष्ट्र की ज्ञानगौरव वर्धिनी संस्कृतभाषा की समृद्धि के प्रति विशेष सावधान है । ये चिन्ता करते हैं कि संस्कृतभाषा में रचना करने वाली कवियों की वाणी का सर्वत्र समादर हो । महादेव की कृपा से कविगण पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त होकर जीवन के अन्तिम उच्चतम लक्ष्य मोक्षरूप पुरुषार्थ को प्राप्त करें. इसी में भारत का कल्याण है –

प्रवर्तता प्रकृतिहिताय पार्थिव सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् ।
ममापि च क्षपयतु नीललोहित पुनर्भव परिगतशक्तिरात्मभूः ।।[19]

सामान्यत कवि अतिशयोक्तियों और कल्पनाओं का प्रयोग कर विषय को अतिरञ्जित कर पाठकों को आकृष्ट करता है, परन्तु कालिदास कल्पनाओं से परे यथार्थ के धरातल पर राष्ट्रहित को

सर्वोपरि मानकर राष्ट्र की जनता को सही मार्गनिर्देश देते हैं । उनका काव्यफलक विशाल है, राष्ट्र से भी व्यापक, समग्र विश्व के कल्याण की भावना से ओत-प्रोत । उनकी सार्वभौमदृष्टि अन्ताराष्ट्रिय मंगलकामना में पर्यवसित होती है, जिसमें सबके दुख समाप्त होकर सुखवितरण की कामना है, जिसमें सभी की कामनाओं की पूर्ति और सबका उल्लास चाहा गया है-

सर्वस्तस्तु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ।।" [20]

सन्दर्भ-सूची

1. पूर्वमेघ - 13
2. कुमारसम्भव- 1/1
3. कुमारसम्भव- 1/17
4. कुमारसम्भव- 1/3
5. ऋग्वेद- 1/164 / 46
6. श्रीदुर्गासप्तशती – 10/5
7. रघुवंश- 1 / 24
8. रघुवश- 1/5
9. रघुवश- 1/6
10. रघुवश- 1/7
11. रघुवश- 1/8
12. रघुवश- 1/9
13. अभिज्ञानशाकुन्तल- 7 / 14
14. अभिज्ञानशाकुन्तल- 7 / 33
15. वायुपुराण – 99/113
16. अभिज्ञानशाकुन्तल- 1/1
17. कुमारसम्भव- 17/55
18. अभिज्ञानशाकुन्तल- 1/13 के पश्चात्
19. अभिज्ञानशाकुन्तल- 7 / 35
20. विक्रमोर्वशीय- 5/25